आत्मकथ्य

धूप और छाँव

शांताबाई दाणी

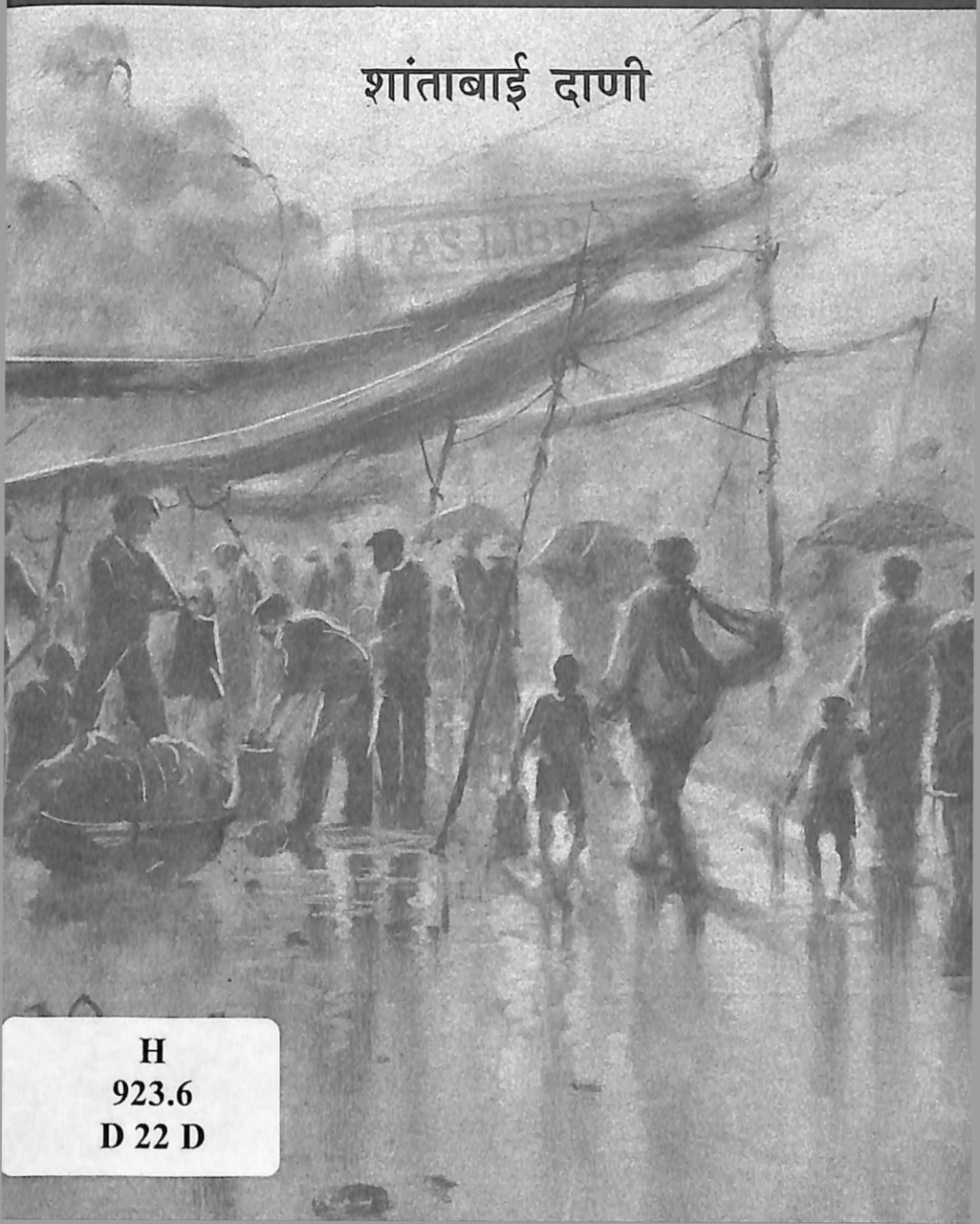

H
923.6
D 22 D

समर्पित

खैरलांजी में समाजिक न्याय के लिए संघर्ष करने वाली दलित बहन सुरेखा भौतमांगे, हम सबकी बेटी प्रियंका और उनके हक में लड़ने वाले दलित महिला नेतृत्व को।

धूप और छाँव

शांताबाई दाणी

अनुवाद व संपादन :
रजनी तिलक
ऊषा अंबौरे

नवयान साहित्य

DAANISH BOOKS

Library IIAS, Shimla

H 923.6 D 22 D

153743

H
923.6
D22D

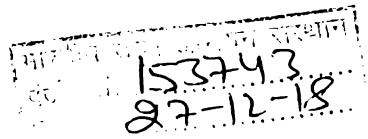
153743
27-12-18

Hindi Translation of "Ratran Din Amha" by Shantabai Dani

पहला संस्करण : अप्रैल, 2007

प्रकाशक :

नवयान साहित्य

एम-3/22, मॉडल टाउन-II

दिल्ली-110 009

फोन : 011-2201 2311, 98715 14040

दानिश बुक्स

बी-802, ताज अपार्टमेंट्स

गाजीपुर, दिल्ली-110 096

फोन : 011-6578 5559, 2223 0812

ईमेल : daanishbooks@gmail.com

ISBN 81-89654-36-5

संपादकीय सहयोग :

अशोक भारती, रामजी यादव, अनीता गुजराती, अनीता भारती, पुष्पा भारती, राजीव सिंह, शंभूप्रसाद, भगीरथ सिन्हा और ध्रुव नारायण

आवरण : सुनीता

आर्थिक सहयोग : उद्यम

एम.के. ऑफसेट प्रोसेस, दिल्ली-110 051

प्रस्तावना

दलित स्त्रियों की यातना, उनका संघर्ष और उनकी उपलब्धियाँ इतिहास में अपनी दस्तक देती रही हैं। उगते हुए सूरज की किरणों की तरह अपनी आभा बिखेर कर वे समाज को उर्जावान बनाती रही हैं। संघर्षशील दलित नायिकाएँ कीचड़ में कमल और धूसरित पगडंडी के किनारे पड़े चमकते मोती की तरह बरबस अपनी ओर सबका ध्यान खींच लेती हैं।

बाबासाहब डॉ. भीमराव अंबेडकर के नेतृत्व में दलित आंदोलन समानता के आंदोलन का प्रतीक बना, अतः ऊँची-नीच, जात-पाँत और लैंगिक असमानता के विरुद्ध इसका मुखर आह्वान रहा है। दलित समाज तीन हजार साल से अधिक अपनी गुलामी से मुक्ति की मशाल जलाए ब्राह्मणवाद को ललकारता रहा है। वह ब्राह्मणवाद के विरुद्ध अपने संघर्ष में अपने पुस्तैनी धंधे छोड़ रहा था तो नई दुनिया में नए-नए आदर्श स्थापित कर रहा था। दलित स्त्रियाँ भी कंधे से कंधा मिलाकर इन संघर्षों को नेतृत्व दे रही थीं।

डॉ. अंबेडकर के नेतृत्व में दलित आंदोलन ने भूखी-प्यासी, गरीबी से त्रस्त दलित जनता में अपने अधिकारों के लिए लड़ने की जान फूँकी। मंदिरों में घुसकर देवताओं के दर्शन का अधिकार, सार्वजनिक स्थलों पर आने-जाने और उन्हें इस्तेमाल करने के सामान अधिकार को हासिल करने के लिए सड़क पर उतर कर लड़ने में दलित पुरुषों के साथ-साथ स्त्रियों ने भी सक्रिय भूमिका अदा की। 1942 में

नागपुर में दलित महिलाओं का ऐतिहासिक अधिवेशन इसी बात की ओर इशारा करता है। अनेक अंबेडकरवादी स्त्रियाँ गाँव-गाँव जाकर अंबेडकर की आवाज अन्य स्त्रियों तक पहुँचा रही थीं। वे भाषण देने से लेकर स्कूल खोलने के अभियान में जुट गई थीं। उनमें शांताबाई दाणी का नाम और उनके कार्य समाज में अपना विशेष स्थान रखते हैं। महाराष्ट्र की राजनीति और रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इंडिया के नेताओं की सूची ताई शांताबाई दाणी के नाम के बिना अधूरी है।

शांताबाई दाणी का जन्म महाराष्ट्र के नासिक जिले के खड़कली गाँव की एक झोंपड़ी में हुआ। महाराष्ट्र के प्रख्यात कविवर वि.वा. शिरवाडकर शांताबाई के सम्मान में कहते हैं, "महार जाति में जन्मी, उच्च शिक्षित कुशल नेतृत्व की क्षमता से ओत-प्रोत, युवावस्था में बाबासाहब के भाषण और कार्यों से प्रेरित हो अपना समस्त जीवन विद्रोही दलित आंदोलन को समर्पित करने वाली शान्ताबाई एकमात्र कार्यकर्ता थी। उसके हृदय में कभी न अस्त होने वाला सूर्य था जिसका प्रकाश आज तक चमक रहा है।" शांताबाई का जन्म एक महार परिवार में हुआ था। शांता के जन्म से पूर्व उनके परिवार को खासतौर से उनके पिता और दादी को घर में एक लड़का होने की उम्मीद थी और जन्म लिया लड़की ने। लड़की के जन्म से उन्हें बेहद तकलीफ हुई।

पिता ने अपनी इस तकलीफ के बावजूद शांता को खूब प्यार किया। वह उसे अपने पास बिठाकर पढ़ाते, अपने साथ-साथ लेकर घूमते। उनका दूध बेचने का धंधा था। अचानक शांता के एक भाई की मृत्यु से उन्हें इतना सदमा हुआ कि उन्होंने उसकी क्षतिपूर्ति शराब पीकर की। उनके इस भटकाव से घर बुरी तरह से गरीबी और तंगहाली में आ गया। शांता का बड़ा भाई अण्णा, जो उनका सौतेला भाई था, अब घर की जिम्मेवारी निभाने लगा। शांता की माँ की बड़ी इच्छा थी कि शांता पढ़े। शायद इसलिए कि उनकी बड़ी

बेटी की गृहस्थी बहुत ही खराब चल रही थी। इसकी एक वजह वो अपनी बेटी के पाँव पर खड़ा न होना भी मानती थीं। इसलिए उसने शांता को खूब पढ़ा-लिखाकर पाँव पर खड़ा करने का संकल्प कर लिया था। चौथी कक्षा तक इनकी पढ़ाई गाँव में हुई, पांचवीं के लिए इन्हें गाँव से दूर जाना पड़ा जहाँ इन्हें एक अध्यापक दाणी मिले जिन्होंने इनकी पढ़ाई-लिखाई और व्यक्तित्व विकास में बहुत सहयोग दिया। जागरूक माँ बच्ची की पढ़ाई के बारे में पूछने जाती। दाणी मास्टरजी ने पढ़ाई के प्रति उनकी जागरूकता और महत्वाकाँक्षा को पहचान कर शांता को 7वीं कक्षा में पूना के सरकारी विद्यालय में दाखिला दिया दिया।

इस तरह वे घर से बाहर छात्रावास में रहकर 10वीं की पढ़ाई तक़ आ पहुँचीं। इसी दौरान उनकी मुलाकात डॉ. लोंढे से हुई जिनसे इन्हें बड़ी बहन का प्यार व आगे पढ़ने की प्रेरणा मिली। दसवीं के रिजल्ट से पूर्व ही इनकी माँ का देहांत हो गया। अब शांता के ज़ीवन ने एक नया मोड़ ले लिया। इन्होंने आगे की पढ़ाई जारी रखी। जब बीए की छात्रा थीं तो इनकी मुलाकात दादासाहब गायकवाड़ से हुई। दादासाहब गायकवाड़ डॉ. भीमराव अंबेडकर के साथ मिलकर छुआछूत के भेदभाव से त्रस्त दलित समाज में विद्रोह के स्वर भर रहे थे। उन्होंने शांता को इन सब बातों की जानकारी दी और बाबासाहब डॉ. अंबेडकर से उनका परिचय कराया। पढ़ी-लिखी दलित युवती दलित आंदोलन की जिम्मेवारी अपने कंधों पर उठाए इससे अच्छी बात और क्या हो सकती है।

एक बार कार्यकर्ताओं की बैठक में बाबासाहब बोल रहे थे तो उनकी आवाज भर्रा गई। स्वयं को संभालते हुए उन्होंने कहा, "मुम्बई जैसे शहर के बंधुओं की शिक्षा के लिए मैंने बहुत कुछ किया है परंतु गाँव में रहने वाले अपने बंधुओं और खासतौर अपनी लड़कियों के लिए मैं कुछ न कर सका, इसका मुझे बेहद दुःख है।"

शांता इस सभा में उपस्थित थीं। शायद डॉ. अंबेडकर की भर्राई आवाज ने उन्हें जीवन भर ग्रामीण दलित भाई-बहनों के लिए काम करने का संकल्प लेने को प्रेरित किया। शांता ने ताउम्र शादी न करके मिशन का काम करने का संकल्प ले लिया। सार्वजनिक कामों के लिए शांता ने पढ़ाई बीच में छोड़ दी। एक कार्यकर्ता और महिला नेता के रूप में समाज से उन्हें काफी सम्मान मिला। वे नासिक जिले की शेड्यूल्ड कास्ट फेडरेशन की अध्यक्ष मनोनीत कर दी गईं। उनके ओजस्वी भाषण महिलाओं के लिए विशेष आकर्षण थे।

शांता ने महाराष्ट्र के गाँव-गाँव जाकर दलितों खासकर दलित स्त्रियों को जगाने में अपना जीवन लगा दिया। अपनी सहेली उजागरे बाई की देखरेख में स्कूल खोला। सरकार से उनके कार्यों के लिए जब उन्हें दलित मित्र अवार्ड मिला तो अवार्ड की राशि को उन्होंने डॉ. अंबेडकर शताब्दी के लिए दान कर दिया।

रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इंडिया के नेता दादासाहब गायकवाड़ के साथ मिलकर इनके प्रयासों से भूमि सुधार आंदोलन में तेजी आई। दादासाहब गायकवाड़ के बीमार हो जाने पर पार्टी के नेतृत्व में बंदरबाँट व षड्यंत्र को रोकने में उन्होंने अपने कुशल नेतृत्व का परिचय देते हुए उसे सुलझाने की पहलकदमी की। शांताबाई दाणी ने आरपीआई में टूट-फूट व गुटबंदी को रोकने और एकता लाने के कई बार प्रयास किए।

आज शांताबाई दाणी हमारे बीच में नहीं हैं परंतु दलित राजनीति में तथाकथित दिग्गजों की महत्वाकाँक्षा से उभरे विवादों को उन्होंने जिस तरह उन्हें एक साथ लाकर सुलझाने के प्रयास किए वे आज भी हमारे लिए मार्गदर्शक हैं।

शांताबाई का व्यक्तित्व व उनके कार्यों को उत्तर भारत में लाने का यह प्रथम प्रयास सेंटर फॉर आल्टरनेटिव दलित मीडिया (कदम) कर रहा है।

शांताबाई दाणी के व्यक्तित्व और कार्यों से भारत के पाठकों का परिचय कराने के पीछे हमारा उद्देश्य है दलित राजनीति में दलित महिला नेत्रियों के जीवन पर प्रकाश डालने के साथ-साथ तत्कालीन आंदोलन में पितृसतात्मक रूझानों को स्पष्ट करना। आरपीआई के अनेक नेताओं में शांताबाई दाणी का नाम अग्रणी है। परंतु हमारे आंदोलन के कर्णधारों ने स्त्रियों के नेतृत्व व योगदान को जाने-अनजाने में पर्दे के पीछे खिसका देने की भूमिका अदा की है।

इस पुस्तक के लिए अनुवादकीय सहयोग मुम्बई की सक्रिय कार्यकर्ता व कवयित्री ऊषा अंबौर ने किया है। ऊषा अंबौरे कोई प्रोफेसनल अनुवादक नहीं लिहाजा टूटे-फूटे अनुवाद से ही हमने अपना दायित्व निभाया है।

पुस्तक को 'मराठी-हिंदी' से लोक हिन्दी में पुर्नलेखन ने काफी समय लिया है। भाषाई सुधार के चक्कर में न पड़कर हमने इसे पुनः लिखना ही ठीक समझा। इस काम में कई लोगों ने सहयोग किया। उनके सहयोग बिना यह काम संभव न था। अशोक भारती, अनीता गुजराती, पुष्पा भारती, अनीता भारती, राजीव सिंह, अवधेश कुमार, रामजी यादव, मुकेश मानस और कु. ज्योत्स्ना, भगीरथ सिन्हा, सुमेधा बौद्ध, शंभु प्रसाद, तबस्सुम, रवि, राहुल मानव और ध्रुवनारायण ने समय-समय पर सुझाव व सहयोग दिया। शेखर पवार ने भी ऊषा अंबौरे के साथ-साथ अनुवादकीय सहयोग दिया। हम इन सब के आभारी हैं।

रजनी तिलक

9 अप्रैल 2007

मेरा जन्म नासिक शहर के खडकली गाँव की एक झोंपड़ी में हुआ। पिताजी को पुत्र प्राप्ति की अपेक्षा थी पर जन्मी एक लड़की। सबसे ज्यादा अस्वस्थ और बेचैन मेरे पिताजी हुए। मेरे जन्म से उनकी सारी आशाएँ नष्ट हो गईं। और बार-बार उनके मुँह से निकलने लगा – "शांति हुई, शांति हुई... ठंढक हुई।"

मेरे जन्म से पिताजी का सारा उत्साह जाता रहा। बारहवें दिन यह पूछे जाने पर कि बेटी का नाम क्या रखें उन्होंने झट से कहा, "शांत रख डालो।"

उसी समय मेरे पिताजी के एक मित्र आए थे। वे मराठा समाज के थे। मुझे देखकर वह बोलने लगे, "अरे धनाजी हमारे घर लड़का हुआ। वह काला है। लेकिन तेरी लड़की अच्छी खासी गोरी है।" तब पिताजी ने मित्र को हँसकर कहा, "गोरापन किसी जाति पर निर्भर नहीं रहता।"

यह अजीब बात थी पर उनकी बात में दम था। मराठा निरुत्तर हो गया।

मेरी माँ अनपढ़ थी। लेकिन उसकी तीव्र इच्छा थी कि उनकी बेटी को पढ़ना चाहिए। मुझे लगता है उस वक्त महार समाज में इकलौती मेरी माँ ही ऐसी होगी जो लड़की को पढ़ाना चाहती थी। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि मेरी बड़ी बहन की शादी तब की प्रथा के अनुसार उसके बचपन में हुई थी और वह ससुराल में खुश नहीं थी। उसका पति निकम्मा, आलसी निकला। उसको बहुत तकलीफ सहनी पड़ी। इसी वजह से मेरी माँ को बहन के बारे

में हमेशा लगता था कि "काश! मेरी ये लड़की पढ़ी-लिखी होती तो आज उस पर यह नौबत नहीं आती।" वह मेरे बारे में हमेशा सोचती थी कि लड़की पढ़-लिखकर बड़ी हो। सवर्णों की ही तरह माँ हमेशा कहा करती, "बेटी, गरीबों की शिक्षा ही आशा की एक किरण होती है। अपना जीवन बिताने के लिए शिक्षा का माध्यम ही काम आएगा।" माँ का यह वाक्य जिंदगी भर के लिए मेरे लिए एक सबक बन गया। शिक्षा पाना मेरे जीवन का एक अभिन्न उद्देश्य बन गया। माँ की ऊंगली पकड़ कर मैं पहले दिन स्कूल गई। उस समय नगरपालिका के स्कूल थे। फिर भी मेरी अनपढ़ माँ ने मुझे प्राइवेट स्कूल में दाखिल कराया। उस समय प्राइवेट स्कूलों में अच्छी पढ़ाई थी और फीस भी कम ही थी।

उस समय मेरे पिताजी का दूध का व्यवसाय था। वे यूरोपियन अधिकारियों के निवास स्थान पर दूध पहुँचाया करते थे। मुझे भी सुबह एक प्याली दूध मिलता था। मेरा बचपन सुखमय बीत रहा था। मेरी माता नौ गज की साड़ी पहना करती थी। मैं घाघरा और पौलका (कुर्ती) पहनती थी।

स्कूल से आने के बाद मैं पतंग उड़ाती, गुल्ली-डंडा इत्यादि सब लड़कों वाले खेल भी खेलती थी। पेड़ पर बहुत चपलता से चढ़ती थी। शाम को झोंपड़ी के सामने वाले आँगन में चटाई पर बैठकर पिताजी से कहानियाँ सुना करती थी। मेरी पढ़ाई की देखभाल भी पिताजी करते थे। उनका अपने परिवार पर अच्छा नियंत्रण था।

जब मैं छोटी थी, तीन महीने की, तब की बात मुझे मेरी माँ बताती थी। बचपन में मेरी माँ मुझे अफीम देकर सुला देती थी। अफीम देने से बच्चे खूब देर तक सोते हैं। उस समय ज्यादातर कामकाजी दलित माताएँ अफीम का इस्तेमाल करती थीं, ताकि बच्चों की अड़चन माँ के काम में बाधा न बने। बच्चे काम में रुकावट पैदा न करें।

एक दिन मुझे भी अफीम देकर मेरी माँ ने कपड़े का झूला बनाकर मुझे झूले में सुला दिया और घास काटने चली गई। मुझे मेरे सौतेले बड़े भाई अण्णा के हवाले सौंप दिया। बड़े भाई अण्णा को उस दिन बहुत तेज बुखार था। फिर भी वह झूला हिलाता रहा। हिलाते-हिलाते झूला अचानक टूट गया और मैं नीचे मोरी में गिर पड़ी। मोरी में एक बड़ा पत्थर पड़ा था, मेरा सर उससे टकरा गया। लेकिन मैं अफीम के कारण उसके नशे में सोई रही। मेरी दादी ने यह सब देखकर भी मुझे नहीं उठाया क्योंकि उनको मेरी जगह पोता चाहिए था। इस बात के लिए उनका क्रोध मुझ पर और मेरी माँ पर बना रहा।

धीरे-धीरे मैं आठ-नौ साल की हो गई। तब तक सब ठीक था। अचानक मेरा छोटा सौतेला भाई शंकर मामूली बुखार से मर गया। तब से हमारी दुनिया ही बदल गई। पिताजी को दारू पीने की आदत लग गई। दूध का धंधा चौपट हो गया। आमदनी बिल्कुल नहीं रही। हमारे बहुत बुरे हाल हो गए। मेरी दादी बहुत परिश्रम करनेवाली थी। वह घास की गठरी बाजार में जाकर बेचती थी। और उन पैसों से इमली का बीज लाकर उसे उबालकर हम लोगों को खिलाती थी। इसी तरह हमारा गुजारा होता था। तब मेरे सौतेले बड़े भाई अण्णा ने हमें और हमारी घर-गृहस्थी को खूब संभाला। उस समय वे बटलर की नौकरी करने लगे थे।

एक बार की बात मुझे अभी भी याद है। मेरे स्कूल में इंस्पेक्शन था और मेरे पास ढंग के कपड़े नहीं थे। मैं माँ के पास जाकर रोने लगी। मुझे नए कपड़े चाहिए। माँ बेचारी कहाँ से लाए? मैं स्कूल जाती हूँ, लिखती हूँ, पढ़ती हूँ, इसलिए सब मुझे बहुत चाहते थे, प्यार करते थे। उसी प्यार ने मुझे जिद्दी बना दिया था। और मैं जिद करने लगी। तब माँ ने अपनी शादी की नौ गज की साड़ी में टाँके डालकर मुझे पोलका और लँहगा पहनाया। वही पहनकर मैं स्कूल गई।

एक दिन की बात है, गर्मियों के दिन थे। गर्मियों में हम लोग आँगन में ही सोते थे। पेड़ के नीचे मेरी चारपाई रहती थी। एक दिन सुबह-सुबह मैं गहरी नींद में थी। पेड़ से मेरे मुँह पर कुछ गिरा। मुझे लगा पेड़ का पत्ता गिरा होगा। लेकिन दूसरे ही क्षण समझ में आया कि वह अच्छा-खासा लंबा साँप है। मैं "माँ-माँ" करके डरके मारे बहुत जोर से चिल्लाई। साँप चला गया। मैं थर-थर काँपने लगी। माँ ने मुझे अपनी गोद में लेते हुए कहा, "समय बुरा आया था। संकट आया था चला गया।" हमारी गरीबी का वो आलम था कि सहन करना मुश्किल हो रहा था। इस पर ऐसी घटना से हम सिहर गए।

मैं दूसरी कक्षा में पढ़ती थी, तब की बात है कि एक दिन माँ को घास काटने के बदले दो आने मिले थे। माँ बहुत खुश थी। उस जमाने में दो आने बहुत ज्यादा होते थे। दो आने में उन्होंने हमारे लिए बहुत सारे मनसूबे बनाए थे। दो आने पल्लू में बाँधकर माँ सामान के लिए दुकान पर जाने लगी। इतने में जोरदार बारिश आ गई। बारिश से बचने के लिए वह दरगाह की ओट में रूक गई लेकिन साथ दूसरे बहुत से लोग भी बरसात से बचने के लिए पहले से खड़े थे। अचानक उसको मेरा ध्यान आया कि मैं अकेली हूँ घर में। बरसात थोड़ी कम हुई, तुरंत माँ निकली दुकान की राह में चावल की खुद्दी लेने के लिए। माँ ने पल्लू में बँधे हुए दो आने देखे, तो वे पल्लू में नहीं थे। न जाने बारिश की गड़बड़ में कहाँ गिर गए। या फिर वह जहाँ खड़ी थी, बारिश रुकने के इंतजार में वहाँ शायद किसी ने पल्लू में बाँधे दो आने निकाल लिए होंगे। दो आने खो गए। वह बहुत दुखी हुई। मन ही मन उसे रोना आया। लेकिन माँ थी बहुत स्वाभिमानी। वह दुकानदार से बोली, "चावल की खुद्दी आज नहीं, मैं कल लेकर जाऊँगी।" मुझे बहुत जोर की भूख लगी थी। माँ ने उसके साथ जो हुआ था हमें बताया। लेकिन मेरी भूख वह सब नहीं

सुनना चाहती थी। तब पड़ोस में जाकर माँ नागली का आटा लाई और उसमें नमक डालकर उसकी पेज बनाकर दी। फिर तुरंत घास काटने चली गई। उस दिन चार आने मिले। शाम को आते समय माँ चावल की खुद्दी, चीकू, भाजी, आम, बेसन वगैरह लेकर आई। उस रात मुझे पेटभर खाना खिलाया। तब उसका चित्त शांत हुआ। हमारी भूख का समाधान मिला। मेरी माँ ईमानदार और निश्छल स्वभाव की थी।

समाज में छुआछूत बहुत ज्यादा थी। हम सब अपने-अपने समाजों में सिमटे रहते। एक बार जब मैं पाँचवीं कक्षा में पढ़ती थी, होली के त्यौहार पर मेरे पिताजी के मराठा मित्र ने अपने घर पर हमें खाने की दावत दी थी। सब लोग घर में बैठकर खाना खाने लगे। आखिर में हम बाप-बेटी को खाने के लिए जानवरों के दालान में परोसा गया। मेरे मन में विचार आया कि सब लोग घर में खाते रहे और हम दोनों को क्यों मल-मूत्र और गंदगी में बिठा दिया। मैंने यह बात पिताजी से पूछी, "हमें ऐसी गंदी जगह पर क्यों बिठाया गया?"

पिताजी का जवाब था -- "हम अछूत हैं।"

"तो क्या हुआ?" मेरा प्रश्न। "हम भी आम आदमी जैसे हैं।"

तब पिताजी ने चुपचाप खाने को कहा। मुझे बहुत बुरा लगा। मैं ठीक से खा न सकी और हम घर आ गए।

पाँचवीं कक्षा में पढ़ने के लिए मुझे घर से दूर जाना पड़ा। लेकिन यहाँ के एक दाणी मास्टर बहुत ही अच्छे थे। मेरा व्यक्तित्व बनाने में उनका बड़ा हाथ था। मेरी माँ धैर्यशाली औरत थी। पिताजी के कारण उसको बहुत-सी कठिनाइयों से मुकाबला करना पड़ा। उससे उसका मनोधैर्य तेज बन कर मेरे जीवन को उज्जवल करता रहा। माँ मेरी पढ़ाई के बारे में स्कूल आकर हमेशा मास्टर से पूछताछ करती रहती थी। उसका असर ये हुआ कि दाणी मास्टर मेरी पढ़ाई पर

ज्यादा ध्यान देने लगे। परिणाम अच्छा ही निकला। मैं अच्छे नंबरों से पास हुई। उनके मार्गदर्शन से मैं सातवीं कक्षा में प्रथम श्रेणी से पास हुई। माँ के महत्वाकाँक्षी स्वभाव से दाणी मास्टर परिचित थे। उन्होंने आगे की पढ़ाई के लिए पूना के गवर्नमेंट स्कूल में मेरा दाखिला करा दिया।

पूना के छात्रावास में मैं अकेली महार थी। मुझे कमरे के बाहर अहाते में जगह दी गई। यहाँ भी छुआछूत ने मेरा पीछा नहीं छोड़ा। लेकिन मैंने पढ़ाई पूरी करने की ठान ली थी। जाति के इस छुआछूत को मुझे स्वीकारना पड़ा। पूना में दो साल में मुझे कई सहेलियाँ मिलीं।

दो साल बाद शिक्षा पूरी करके वापस लौट आई। सबसे ज्यादा खुशी और गर्व मेरी माँ को हुआ, और दाणी मास्टर को भी। सबने मेरा सत्कार किया। उसके बाद मुझे तुरंत नासिक बोर्ड में नौकरी मिली, विंचूर गाँव में। वहाँ नौकरी में लगभग एक साल निकाला।

उस एक साल में विंचूर गाँव में, जहाँ मैं शिक्षिका थी, जो घटना हुई आज भी उसकी याद आने पर शरीर के रोंगटे खड़े हो जाते हैं। हुआ यह कि एक दिन स्कूल की पिकनिक गई थी। गाँव के बाहर पहाड़ी पर देवी का मंदिर था। सब शिक्षकों के साथ मैं भी मंदिर में चली गई। बात-बात में मैं सिद्धि देवी के मूरत तक जा पहुँची। मैं अछूत हूँ, महार हूँ, हम लोगों को मंदिर में जाने का अधिकार नहीं, मूरत को स्पर्श करने से छुआछूत होता है। खेल-कूद और हँसी-खुशी में, ये सब बातें मेरे ध्यान में नहीं रहीं। यह मेरी गलती थी।

जब मंदिर के पुजारी को यह बात पता चली, तो मुझे बड़ी घबराहट हो गई। जैसे कि जमीन फट गई। कोलाहल मच गया, ज्वालामुखी-जैसा विस्फोट हुआ। मानो आकाश फट गया हो। हवा की तेजी से यह बात कानोकान फैल गई। विंचूर यानि कि नासिक

के सरदार विंचूरकर का संस्थान। उस वक्त के रिवाज के मुताबिक पूरा दरबार भरा था। उसमें मुझसे पूछा गया, "क्या तुम देवी के मंदिर में गई थी?"

मैंने हाँ कहा।

"तेरी जात कौन सी?"

मैंने कहा--"महार"

"तुम लोगों के लिए मंदिर प्रवेश वर्जित है। यह मालूम नहीं था?"

मैंने उत्तर दिया, "स्कूल के सब शिक्षकों के साथ गप्प करते-करते अनजाने में चली गई। जानबूझ कर नहीं गई थी।" सर नीचे कर लेकिन बड़े धैर्य और आत्मविश्वास से मैंने वस्तुस्थिति बतला दी। दरबारवालों ने मेरे खिलाफ कोई कार्यवाही नहीं की। चेतावनी या किसी भी प्रकार का कोई जुर्माना नहीं किया। क्योंकि सरदार विंचूरकर सुधारवादी थे। विंचूर से हम लोग नासिक वापस आए। तो माँ बीमार पड़ गई। उसे दवाखाने में दाखिल कराना पड़ा। वहीं एक डाक्टर डॉ. लोंढे काम करती थीं जिनसे मेरा परिचय हुआ।

उसी दौरान मेरी बदली नांदगाँव को हो गई। डॉ. लोंढे के कहने पर मैंने नौकरी से इस्तीफा दे दिया। तब मेरे बड़े भाई अण्णा मुझ पर बहुत नाराज हुए थे। मैंने और मेरी माँ ने उन्हें समझाया तो मान गए।

आगे डॉ. लोंढे के साथ रहकर मेरी पढ़ाई चल रही थी। पढ़ाई, चिंतन, मनन। विविध सामाजिक-राजनैतिक विषयों पर डॉ. लोंढे के साथ चर्चा हुआ करती थी। मेरे व्यक्तित्व का विकास चारों ओर से हो रहा था।

इतने में डॉ. लोंढे की बदली सौराष्ट्र में सुरेंद्र नगर के लिए हो गई। उनके साथ मैं भी बासदा गई। मेरी पढ़ाई जारी थी। नियमित पढ़ाई का फायदा यह हुआ कि मैट्रिक परीक्षा के मेरे पेपर्स अच्छे गए। परीक्षा केंद्र बड़ोदा था। बड़ोदा से वापस बासदा आई तो माँ

का स्वास्थ्य विगड़ने लगा। अण्णा का खत मिला। मैट्रिक रिजल्ट भी मैं नहीं ले पाई। मैं सोच ही रही थी कि नासिक निकलूँ तभी अण्णा का तार आया। माँ के दुनिया छोड़कर चले जाने की बात सुन मैं सन्न रह गई और एक सदमा पहुँचा। माँ को मेरा मैट्रिक का रिजल्ट तो देखकर जाना था। इतनी कठिन परिस्थितियों में, गरीवी में माँ ने मुझे ज्ञान की ऊर्जा दी, आत्मविश्वास दिया। अव वो इस दुनिया में नहीं रही। उसने मेरे लिए इतने कष्ट उठाए और अपने लिए मुझे कुछ भी करने का मौका नहीं दिया। मेरे आने का इंतजार तक नहीं किया। इस बात का वहुत दुख हुआ मुझे।

बासदा से नासिक तक का रास्ता 14-15 घंटों का है। माँ तो नहीं मिलने वाली थी। लेकिन उसकी अंतिम विभूति माथे पर लेना चाहती थी।

डॉ. लोंढे ने मुझे पत्र भेज सांत्वना दी। माँ के वाद मेरे जीवन में डॉ. लोंढे का दूसरा स्थान था। मैंने मैट्रिक की परीक्षा अच्छी तरह से उत्तीर्ण की। दाणी घराने में मैं प्रथम मैट्रिक थी। डॉ. लोंढे फिर से नासिक आईं। उन्होंने खुद का अपना दवाखाना खोला। अब मैं छात्रावास में रह कर कॉलेज की पढ़ाई कर रही थी।

महार समाज में नासिक में मैं ही अकेली पढ़ी-लिखी लड़की थी। उसी समय दादासाहव गायकवाड़ से मेरा परिचय हुआ। वे हमारे रिश्तेदार लगते थे। वह बाबासाहब डॉ. अंबेडकर के विद्रोही आंदोलनों में काम करते थे।

सन् 1930 से 1935 के पाँच साल के दरम्यान बाबासाहब का कालाराम मंदिर प्रवेश के लिए आंदोलन चल रहा था। इस सिलसिले में नियमित रूप से बाबासाहब का पत्र-व्यवहार जारी था। दादासाहब के जरिए मेरा भी उनके काम से परिचय हुआ। बाबासाहब की संपादन में निकली हुई सभी पत्रिकाएँ मैं पढ़ने लगी। उनकी कलम की रोशनी अंतर्मन में पहुँच जाती थी। हमारे एच.पी.टी. कॉलेज ने

ओपनिंग सेरेमनी के लिए बाबासाहब डॉ. अंबेडकर को आमंत्रित किया था। मेरा मन खुशी से नाचने लगा। प्रत्यक्ष उन्हें देख सकूँगी यह सोच मैं रोमांचित हो उठी। उनके तेजस्वी, बुद्धिशाली, प्रभावशाली विचार सुनने को मिलेंगे, यह सोचकर मैं बड़ी आनंदित हुई। मेरा मन उत्साह से भर उठा।

मुझे छात्रावास में मिलने के लिए डॉ. लोंढे अक्सर आती थीं। मेरी सहेली कुमारी एस.के. उजागरे की आवाज बड़ी सुरीली थी। उसने डॉ. बाबासाहब अंबेडकर के समारोह के शुरू में 'वंदेमातरम्' राष्ट्रगीत गाया। बाबासाहब डॉ. अंबेडकर ने युवावर्ग के मार्गदर्शन के लिए अच्छा भाषण दिया। उनका हर एक शब्द मेरे दिल को प्रभावित कर रहा था और दिलोदिमाग में छा गया। मैंने मन ही मन ठान लिया कि अपने बांधवों के लिए मुझे काम करना है। शायद उसी वक्त मैंने शादी न करने का फैसला कर लिया। इस महान नेता से मुझे एक नई जीवन दृष्टि मिल गई। शोषित-पीड़ित अपने भाई-बहनों के लिए, उनके दुख-दर्द को दूर करने के लिए मैंने अपना जीवन समर्पित कर दिया।

दादासाहब भी बाबासाहब के आंदोलन के बारे में अपना स्वतंत्र मत व्यक्त करते थे। लोगों की आर्थिक समस्याओं के निवारण, सरकार के साथ संघर्ष, सवर्णों का विरोध आदि सब बातों को लेकर दादासाहब और बाबासाहब में चर्चा होती थी। दादासाहब ज्यादा पढ़े-लिखे न होने के बावजूद भी आगे जाकर बाबासाहब का बायाँ हाथ बन गए थे।

मैं बी.ए. फाइनल में थी। लेकिन अब मेरा पूरा ध्यान सार्वजनिक कार्यों में लगा रहता था। बाबासाहब के कार्यों से प्रेरित होकर पूना के सत्याग्रह में भाग लिया। तब डॉ. लोंढे ने मुझे समझाया कि पहले पढ़ाई पूरी कर लो। डॉ. लोंढे का कहना एकदम सही था। पर मैं परीक्षा न दे सकी। मुझे अभी नासिक जिले की शेड्यूल्ड कास्ट

फेडेरेशन का अध्यक्ष बनाया गया था। मेरे लिए इस काम के आगे परीक्षा का कोई महत्व नहीं रहा। फिर उन्होंने भी मेरे मन में एक कार्य के प्रति तीव्र झुकाव को देख पढ़ाई के लिए विशेष आग्रह नहीं किया। उसके बाद मैं आखिर तक बी.ए. की परीक्षा नहीं दे पाई।

एक कार्यकर्ता के रूप में लोग मेरा सम्मान करते थे। मुझे चाहते थे, सुनते थे, मेरे साथ बड़े आदर के साथ पेश आते थे, मेरी तारीफ करते थे, इज्जत देते थे। कार्यकर्ताओं में मिलजुलकर रहने का माहौल था। हम लोगों के आपसी संबंध आत्मीय और विशुद्ध थे। कभी एक दूसरे का तिरस्कार या द्वेप भावना नहीं थी। मिलजुलकर काम करने में मजा आता था। हम लोगों में, बस्ती में, झोपड़ी में जाकर बाबासाहब के आंदोलन का महत्व समझाते थे। हम समाज को जगाने का काम इसी तरह करते थे।

1946 से 1952 के कालखंड में बाबासाहब के कार्यों से दलित जनता प्रभावित हुई थी। रात में सांस्कृतिक कार्यक्रम के जरिए जनजागरण करते थे। कभी सभा की जगह पर सभा के पहले जलसा होता था। उसमें साक्षरता, अस्पृश्यता निवारण, अंधविश्वास निर्मूलन, देशभक्ति आदि अनेक विषयों को लेकर भाषणों के साथ मनोरंजन भी होता था। रंगकर्मी सोनवणे का जलसा अच्छा चल रहा था।

सन् 1952 की घटना है। सोनवणे ने दादासाहब से अपना जलसा डॉ. अंबेडकर को दिखाने की इच्छा प्रकट की। एक दिन मौका देखकर बाबासाहब नासिक जलसा देखने आए।

जलसा में एक प्रसंग इस प्रकार था कि उसमें राघोतात्या नाम का एक पात्र, जिनका कद बहुत छोटा था, उसके मंच पर आते ही लोग हँस पड़ते थे। देह में देवी का दौरा आने पर वे झूमने लगते थे। सोवनणे इस जलसे में सरदार की भूमिका में थे। उन्होंने राघोतात्या से प्रश्न किया–

"तू कौन है भई?"

"मैं हूँ खंडेराव देव।"

"अच्छा! तो तू मंदिर के बाहर क्यों खड़ा है? अंदर क्यों नहीं जाता?"

"अजी! क्या करूँ शरीर महार का और (आया हुआ) देव है मराठों का तो कैसे जा सकता हूँ मंदिर में? इसलिए नहीं जा रहा।"

यह सुनकर बाबासाहब हँसते-हँसते लोटपोट हो गए थे।

सन् 1947 में नासिक में लड़कियों के लिए रमाबाई अंबेडकर छात्रावास बनाया गया। उसका उद्घाटन खुद बाबासाहब डॉ. अंबेडकर ने किया था। सन् 1932-33 में मनमाड में बाबासाहब डॉ. अंबेडकर विद्यार्थी आश्रम बनाया गया। तब 'दलित रंगभूमि' और 'दलित साहित्य' और 'बौद्ध साहित्य' का कोई अता-पता नहीं था। फिर भी हमारे लोग दैनंदिन अनुभव का चित्रण अपने नाटक में करते थे।

धीरे-धीरे मेरा वक्तृत्व सुधर गया। अब मैं स्टेज पर ठीक से बोलने लगी थी। उस जमाने में पार्टी का काम करने वाली, राजनीति में हिस्सा लेने वाली महार समाज की स्त्री को देखने या सुनने के लिए स्त्रियों की अच्छी-खासी भीड़ होती थी। मुझे अच्छी तरह याद है, सभा में एक श्रोता ने कहा कि कांग्रेस की लीडर इंदिरा गांधी हैं, लेकिन हमारी इंदिरा गांधी है शांताबाई दाणी। मुझे यह सुनकर खुशी हुई कि चलो अपने कार्यों को लोग मान तो रहे हैं। मैं किसी की स्तुति से न बहकती और न ही किसी की निंदा से नाराज होती। इसीलिए मैं अपना कार्य गतिशील रूप से करती हूँ।

मेरी इस गति को दादासाहब की मृत्यु ने थोड़े समय तक रोक लगा दिया। उनकी मृत्यु सन् 1972 में 29 दिसंबर को हुई।

1925 से लेकर 1960 तक स्कूल की कक्षा में हम लोगों को पीछे वाली बेंच पर बिठा देते थे। अब तक हम लोग अन्याय सहन करते आए थे। मेरे मन में विचार आया क्यों नहीं हमारे अपने स्कूल हों? मैंने साथियों के साथ बातचीत करके जनवरी सन् 1950 को देवलाली

आरक्षण ... संस्थान
पंजी सं. 15374
दिनांक .....

में एक बैठक बुलाई। बैठक में सर्वसम्मति से एक संस्था की स्थापना की गई। नाम रखा गया बाबासाहब डॉ. अंबेडकर ज्ञान विकास केंद्र। दादासाहब हमारे ऊपर खूब क्रोधित हुए। किसने कहा था आपको स्कूल का प्रस्ताव बनाने को? दादासाहब व्यवहारी थे। संस्था का आर्थिक पक्ष इतना मजबूत नहीं था। हम दोनों में इस बात की चर्चा हुई। हमारे समाज के लिए स्कूल खोलना कैसे और कितना जरूरी है यह मैंने उनको समझा दिया। और मैं अपने निश्चय से पीछे भी हटना नहीं चाहती थी। मेरी जिद देखकर उन्होंने अनुमति दे दी।

हमारे कार्यकर्ता चंदा जमा करने में जुट गए। शहर के प्रतिष्ठित एवं शरीफ लोगों की मदद से और चंदे में जमा हुई राशि से स्कूल बन गया। उस जमाने में कार्यकर्ताओं में आत्मविश्वास था। समाज के लिए त्याग की भावना थी।

मेरी सहेली सरिता उजागरे स्कूल की स्थापना के बाद से पाठशाला की प्रमुख रही। स्कूल चलाने में उसका बहुत बड़ा योगदान मिला। उजागरे बाई ने स्कूल के उत्कर्ष के लिए बहुत कष्ट उठाए। स्कूल की प्रगति देखकर शिक्षाधिकारी उजागरे बाई की तारीफ करते थे।

मैं अनेक वर्षों तक इस संस्था की उपाध्यक्ष रही। अध्यापक लोगों के भले-बुरे अनुभव मिले। कुछ समय बाद पाठशाला के लिए जगह छोटी पड़ने लगी। आसपास के देहातों से आनेवाली लड़कियों की संख्या दिन ब दिन बढ़ती जा रही थी। हमें सरकारी जमीन मिल गई। उसी दरम्यान मेरी आँखों का मोतियाबिंद का ऑपरेशन हुआ। सरकारी जगह पर स्कूल बनाने के लिए हमारे स्कूल के हेडमास्टर से लेकर चौकीदार तक सबने एक महीने का अपना वेतन दिया था। और बड़े स्वाभिमान के साथ मैं कहती हूँ कि वि.वा. शिरवाडकर से हमारी संस्था को कठिन समय पर आर्थिक मदद मिलती थी। साथ-साथ उनका मार्गदर्शन और सहानुभूति हमारी संस्था

को मिलती रही। मुझे क्रिकेट खेलने का बहुत शौक था। 1943-44 में कॉलेज में क्रिकेट शुरू किया। तब मैं एक टीम की कैप्टन बनी थी।

सन् 1983 में स्कूल पुरानी जगह छोड़कर नई जगह में आया। और पुरानी जगह पर "कुणाल प्राथमिक स्कूल" खुलवाया। कुणाल स्कूल का सारा कारोवार सरिता उजागरे ने फिर से संभाला। स्कूल की प्रगति और उन्नति कराई। स्कूल को समृद्ध बनाया। इसके लिए उजागरे की बड़ी तारीफ हुई। सुकुमाग्रज तथा तात्यासाहब ने भी उजागरे के प्रबंधन की भूरी-भूरी प्रशंसा की।

मेरे लिए सन् 1987 का साल वहुत अच्छा रहा। शिक्षा के क्षेत्र में मेरी सेवा को महाराष्ट्र शासन ने स्वीकार किया और मुझे "सावित्री बाई फुले" पुरस्कार मिला।

सन् 1985-86 साल की घटना है। समाज कल्याण से एक मुख्य लिपिक आए और बोले "दलित मित्र पुरस्कार" के लिए आपके नाम की कोशिश चल रही है। मैंने उत्तर दिया – "मैं खुद दलित हूँ। दलितों की सारी पीड़ा मैंने सही है। उनका दुख-दर्द मुझे अच्छी तरह से मालूम है। दलितों का हिस्सा हूँ, अंग हूँ मैं। तो मैं दलित मित्र कैसे बनूँगी?" लिपिक ने कहा – "मैडम आप यह सब बातें लिख कर दीजिएगा।" मैंने उसको कहा, "आपने यूँ ही पूछा इसलिए मैं भी यूँ ही बता रही हूँ।"

मुझे हमेशा लगता है कि शासन को दलितों के बारे में इतनी ही हमदर्दी है, तो "दलित मित्र" पुरस्कार देने का जो खर्चा आता है वही पैसा दलितों की झोंपड़ियों में प्राथमिक सुविधा, जैसे कि नल, संडास, वगैरह पर खर्चा करना चाहिए। और यही सब मैंने उस लिपिक को लिखकर दिया।

मुझे "सावित्री बाई फुले" पुरस्कार मिला तो मेरे सब संबंधित मित्र परिवार को, सहेलियों को और कार्यकर्ताओं को बड़ी खुशी हुई।

समाचारपत्रों में भी मेरे फोटो के साथ वह खबर छपी थी। कविवर वि.वा. शिरवाडकर का बहुत सुंदर अभिनंदन पत्र आया। "सावित्री बाई फुले" पुरस्कार मिला इस कारण स्कूल में मेरा सत्कार हुआ।

सन् 1988 की बात है। जनवरी का महीना था। एक दिन सुबह किसनराव खोब्रागडे मेरे यहाँ आए और कहने लगे, "मुझे आपको गुप्तदान करना है।" मैंने कहा, "ठीक है। जैसी आपकी मर्जी।" संस्था की उपाध्यक्ष होने के नाते मेरे पास हमेशा कैशमेमो रहता था। जैसे ही मैंने कैशमेमो निकाला तो खोब्रागडे चौंककर बोले – "मुझे संस्था को नहीं देना है।"

"ठीक है मुझे दे दीजिए।" उन्होंने मुझे गुप्तदान दिया। रुपए थे पाँच हजार। शासन की तरफ से सावित्री बाई फुले पुरस्कार के पाँच हजार मिले। बाबासाहब डॉ. अंबेडकर जन्मशताब्दी कमेटी के एक समारोह में मैंने वे दस हजार रुपए दे दिए।

एक बार विधायक के चुनाव के लिए मैं भी कांग्रेस के खिलाफ लड़ी थी। जाहिर है कांग्रेस उम्मीदवार विजयी हो गए। चुनाव लड़ना आसान नहीं होता। हम लोग ठहरे गरीब। और चुनाव लड़ने में तो पैसा लगता है।

दादासाहब संसद के लिए और मैं विधानसभा के लिए चुनाव लड़े। हम दोनों ही हार गए। तब वे हँसकर बोले, "अरे मैं रोज सर्टिफिकेट, अर्जियों, सिफारिश पत्र पर हस्ताक्षर करता हूँ, उतने मत भी मुझे मिलते तो मैं चुनकर आता।" हमारे कार्यकर्ता बहुत श्रद्धावान थे। उस वक्त के कार्यकर्ता अच्छे थे। अपने सिद्धांतों पर पक्के थे। बड़ी इज्जत करते थे बाबासाहब, दादासाहब और मेरी।

सन् 1952 की बात है। नगर जिले में जब बाबासाहब की प्रचार सभा की गई थी। प्रचार में मराठा लोग हमारी निंदा करते थे, कहते थे – "तुम महार लोग क्यों चुनाव लड़ते हो?" मुझे बड़ा बुरा लगा। भाषण देते समय बड़े क्रोध से मैं बोली, "आपमें हिम्मत है तो, आ

जाओ महारों के साथ टकरा के दिखाओ।" मैंने कांग्रेस उम्मीदवार की वहुत कड़वे और जोशपूर्ण शब्दों में आलोचना की। जोश में आकर बोलने से मुझे पसीना आ गया, तो श्रोतावर्ग में से एक एक बुजुर्ग आदमी खड़ा होकर बोला, "अरे कोई मेरी माँ का पसीना पोंछो रे।" मेरी नजर में इससे बड़ा सम्मान कुछ नहीं हो सकता।

मेरे उग्र वक्तव्य से हमारे कार्यकर्ता डर गए। बड़ी हलचल मची उनमें। उस रात हम सब वहीं ठहरे थे। हम जहाँ ठहरे थे वहीं दूसरे दिन एक कांग्रेस कार्यकर्ता आया और मुझसे कहने लगा, "माईसाहब रात को जो हुआ उसे भुला दो। और मेरे घर की चाय पीने का निमंत्रण स्वीकार करो।" यह बात सुनकर हमारे कार्यकर्ता बहुत खुश हुए। उन सबको यह बात चमत्कार-जैसी लगी।

14 अक्तूबर 1956 के दशहरे का दिन भारत के लिए, विशेषतः दलित समाज के लिए स्वर्णिम दिन है। बाबासाहब डॉ. अंबेडकर ने 1935 साल में ऐलान किया था, "मैं हिन्दू धर्म में पैदा हुआ, लेकिन इस धर्म में मरूँगा नहीं।" जब बाबासाहब ने बौद्ध धर्म को स्वीकार किया तब उनके साथ लाखों दलितों ने भी बौद्धधर्म को स्वीकार किया। बाबासाहब भगवान बुद्ध की शरण गए।

बौद्धधर्म स्वीकार करने के थोड़े ही दिनों बाद डॉ. अंबेडकर का महापरिनिर्वाण हुआ। चारों ओर अंधकार ही अंधकार छा गया। दलित समाज तितर-बितर हो गया। चलता-फिरता इतिहास बिखर चुका था। 1958 में रिपब्लिकन पार्टी की स्थापना हुई। यह पार्टी किसी एक खास जाति के लिए नहीं थी। सर्वहारा, पीड़ित, शोषित वर्ग की पार्टी थी। पार्टी के अध्यक्ष थे एन. शिवराज। 1958-59 साल में रिपब्लिकन पार्टी बहुत ही सक्रिय थी। इसी दौरान नागपुर दीक्षाभूमि की चौदह एकड़ भूमि सरकार ने दलितों को दान दी। यह काम किया यशवंतराव जी चव्हाण ने। कुछ समय बाद दिन ब दिन रिपब्लिकन पार्टी की हालत खराब होती गई। कार्यकर्ता इधर-उधर हो गए। पार्टी में त्याग करने

वाले नहीं रहे। पार्टी स्वार्थी लोगों के हाथ में आ गई। रिपब्लिकन पार्टी आज भी शोचनीय अवस्था है। अपने रिपब्लिकन पार्टी की यह हालत देखकर बड़ा दुख होता है मुझे। अभी भी दलितों को संघर्ष जारी रखना चाहिए। बड़े धैर्य और कष्ट से दादासाहब रिपब्लिकन पार्टी का अपना कार्य चलाते थे।

1965 में रिपब्लिकन पार्टी ने देशव्यापी आंदोलन किया। इस दौरान दलितों के मूलभूत प्रश्न उठाए गए। परती जमीन भूमिहीनों को देना, कामगारों के आर्थिक प्रश्न व सामाजिक, शैक्षणिक क्षेत्र के कई अन्य मुद्दों पर आंदोलन छेड़े गए। बाबासाहब डॉ. अंबेडकर का तैलचित्र लोकसभा में लगाने के लिए सरकार से माँग की गई। हमारी यह माँग 1990 में यानी 25 साल बाद पूरी हुई। तब के वर्तमान प्रधानमंत्री वी.पी. सिंह के नेतृत्व ने बाबासाहब का तैलचित्र लोकसभा में लगवाया। तैलचित्र लगाने-जैसे मामूली काम के लिए वर्षों हमें संघर्ष करना पड़ा है। इसमें हमारी शक्ति व्यर्थ जाती है।

14 अप्रैल 1966 को डॉ. बाबासाहब की 75वीं वर्षगाँठ यशवंतराव चव्हाण और भैयासाहब अंबेडकर की उपस्थिति में बड़ी धूमधाम से मनाया गया। उस दिन इस सभा में 1 लाख स्त्री-पुरुषों के बीच यशवंतराव चव्हाण ने कहा कि बाबासाहब के विचारों की ऊँचाई हिमालय के शिखर जैसी है। अतः उनके ध्येय की हमें रक्षा करनी चाहिए। और वे केवल किसी एक पक्ष के नहीं सामाजिक, आर्थिक समता की पुकार करनेवाले सभी के हैं।

उसके बाद यशवंतराव चव्हाणजी ने दादासाहब रूपवते के सामने रिपब्लिकन पार्टी और कांग्रेस के बीच गठबंधन का प्रस्ताव रखा। शुरू में दादासाहब गायकवाड़ इस तरह के गठबंधन के खिलाफ थे। उनको बावासाहब का कहना याद आया। वे कहते थे, "कांग्रेस पार्टी एक जलता घर है।" आखिर दादासाहब के मन का झुकाव देखकर मैंने स्पष्ट शब्दों में कहा – "गठबंधन के बाद

हमारे कई लोगों को कुर्सी अवश्य मिल जाएगी। पर हमारा सैद्धांतिक विरोध खत्म हो जाएगा।"

मेरा यह स्पष्ट कहना दादासाहब को अच्छा नहीं लगा। उन्हें मुझ पर क्रोध आया। लेकिन अब भी मुझे लगता है मेरा मुद्दा बिल्कुल सही था। आखिर 15 अगस्त 1966 को आर.डी. भंडारे ने कांग्रेस पार्टी में प्रवेश किया। इस पर आचार्य अत्रे की प्रतिक्रिया मराठा दैनिक में छपी थी "आग से खेल"। भूमिहीनों का देशव्यापी जन आंदोलन चल रहा था। उसमें हमारे हजारों लोग जेल में गए।

जब वसंतराव नाईक महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री थे, दादासाहब ने विधान परिषद् में एम.एल.सी. के लिए मेरे नाम की सिफारिश की। सन् 1968 से 1974 तक विधान परिषद् की एम.एल.सी. के बतौर मुझे काम करने का एक अवसर प्राप्त हुआ।

हमारी दलित स्त्रियों पर अत्याचार के खिलाफ मैंने आवाज उठाई। 1972 में श्रीलंका में विश्व बौद्ध परिषद् की सभा हो रही थी। मैं, बापूसाहब राजभोज और मेरी सहेली सरिता उजागरे ने शिविर रखा था। उसमें भूमिहीनों के महत्त्वपूर्ण प्रश्न, समता सैनिक दल की आवश्यकता, बेरोजगारी, बेकारी, राजव्यापी महिला संगठन इत्यादि व्यापक विषयों पर चर्चा हुई। मार्गदर्शक थे – रा.सु. गवई, गाणर, खासदार कुंभारे, रोहमदादा, दादासाहब शिर्के, झाल्टे, आमदार आरमुगम, कमलाबाई गवई इत्यादि।

प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने 21 सूत्री कार्यक्रम बनाया था। उसमें से 11 कार्यक्रम दलितों की उन्नति के लिए थे। परिणामतः हमारे शिविर में उसको मान्यता दी गई। महाराष्ट्र शासन ने मराठावाड़ा विद्यापीठ को बाबासाहब डॉ. अंबेडकर का नाम देने का सुझाव रखा। इस बात को लेकर औरंगाबाद में फसाद फैल गया। बौद्ध व रिपब्लिकन जनता पर सवर्ण लोगों ने जोर के हमले शुरू किए। दलितों की बस्तियाँ जला दी गईं। बस्ती में जाकर हंगामा करना,

औरतों, बूढ़े, बच्चों के साथ बुरी तरह पेश आना आम हो गया था। खुद दंगा-फसाद करके पुलिस थाने में झूठी रिपोर्ट लिखवाई गई। दलितों का जीना हराम कर दिया गया।

उस समय दंगाग्रस्त इलाकों में जाकर मैंने उनकी तकलीफें अपनी आँखों से देखीं। रिपब्लिकन पार्टी की अध्यक्ष होने के नाते मैंने तब के मुख्यमंत्री शरद पवार को बारह पन्नों की जाँच रिपोर्ट भेजी। उसमें 41 दंगापीड़ित लोगों के नाम थे। कुल मिलाकर 69 लोग थे। जगह-जगह पर जाकर हमारे कार्यकर्ताओं ने जानकारी हासिल की। 1978 में मैंने एक पत्रकार कांफ्रेंस बुलवाई थी। उस कांफ्रेंस की खबर सविस्तार छपी थी। रा.सु. गवई ने मुझ पर दूसरी समानांतर पार्टी बनाने का झूठा आरोप लगाया। लेकिन तुरंत इस बात का खंडन हमारे कार्यकर्ताओं ने किया। इस तरह गवई गुट और गायकवाड़ गुट आपस में झगड़ने लगे।

2 मार्च 1980 को कालाराम मंदिर आंदोलन के 50 साल पूरे हुए थे इसलिए इस दिन आंदोलन की याद में स्वर्ण महोत्सव वर्ष मनाने का निश्चय किया। अनेक सदस्यों और कार्यकर्ताओं की उपस्थिति में 3 मार्च 1980 को बड़ा जुलूस निकाला गया। 4 घंटे तक जुलूस चलता रहा। कालाराम मंदिर के पास जुलूस आते ही 'गांवकरी' के संपादक पोतनीस और मंदिर के पुजारी ने जुलूस का स्वागत किया। यदि ऐसा 1930 में होता तो कुछ अलग ही चित्र दिखता। बहरहाल, बाड़े में यह जुलूस बड़े युद्ध बाड़ा में गया और वहाँ बाबासाहब डॉ. अंबेडकर की मूर्ति का उद्घाटन कवि कुसुमाग्रज के करकमलों से हुआ।

तब उन्होंने अपने भाषण में कहा कि "भारत के इतिहास में आज का दिन स्मरणीय है। कालाराम मंदिर प्रवेश का आंदोलन हिंदुओं की मानसिकता को झकझोरने का प्रतीकात्मक आंदोलन था। सवर्णों की छुआछूत की मनोवृत्ति से झगड़ा था। जब तक यह मनोवृत्ति कायम

रहेगी, तब तक यह संघर्ष जारी रहेगा। इस दृष्टि से बाबासाहब का स्मरण आज भी प्रेरणादायी है। उन्होंने मानवीय अधिकारों से परिचित कराने का श्रेष्ठ कार्य किया है। वे दलितों को लाचारी के कठघरे से निकालकर स्वाभिमान के कक्ष में ले गए।"

स्वर्ण महोत्सव का फायदा हुआ। रिपब्लिकन पार्टी को फिर से एकजुट बनाने की मानसिकता राजनेताओं और कार्यकर्ताओं में उभर आई। इसी सिलसिले में सभा का आयोजन किया गया। सभा में 18-19 वक्ताओं ने अपने विचार व्यक्त किए। जिनमें थे जे.डी. खैरनार, राजा ढाले, दादासाहब पोतनीस, प्रकाश अंबेडकर, मुंबई की महिला कार्यकर्ता प्रतिभा बच्छाव, दादासाहब रूपवते ॲड, अशोक निले, रा.सु. गवई इत्यादि। 1980 से 1986 तक रिपब्लिकन पार्टी के एकीकरण के कार्य को किसी ने आगे नहीं बढ़ाया। बड़े अफसोस के साथ मुझे बोलना पड़ता है कि इन 6 सालों में स्थिति और बिगड़ गई। पुनः कार्यकर्ताओं में चर्चा होने पर बैठक बुलानी पड़ी। 20 अप्रैल 1986 को रा.सु. गवई के निवास के कमरे में बैठक हुई। इस बैठक में फलटण, पूना, मुंबई, नासिक आदि जगहों से लोग आए थे।

प्रस्तावना भाषण में मैंने शुरू से ही एकता की भूमिका सबके सामने रखी। आने वाले भविष्य ने इसकी नितांत आवश्यकता बताई। एक-एक करके सबको बोलने का अवसर दिया गया। सब अपने-अपने मुद्दे पर अड़े रहे। हरेक को अपना ही गुट बड़ा लगता था। परिणामतः इस बैठक का कुछ भी लाभ नहीं हुआ। हमारा प्रयास असफल रहा। दलित समाज और अपने रिपब्लिकन पार्टी की हालत देखकर मन ही मन मैं बहुत दुखी हुई। लेकिन उसका कुछ इलाज नहीं था।

इस बैठक में रिपब्लिकन पार्टी का विघटन हुआ। इसी सिलसिले में मुझे 1970 की घटना याद आई। मैं जापान गई थी। दादासाहब

गायकवाड़ रिपब्लिकन पार्टी के अखिल भारतीय स्तर पर अध्यक्ष थे औरा राजाभाउ खोब्रागडे सेक्रेटरी। लेकिन अध्यक्ष और सेक्रेटरी दोनों में बनती नहीं थी।

एक दिन अखबारों में छपा कि रिपब्लिकन पार्टी के सेक्रेटरी राजाभाउ खोब्रगडे पार्टी के अध्यक्ष बन गए। दादासाहब गायकवाड़ को अध्यक्ष पक्ष से हटा दिया गया। पार्टी का सेक्रेटरी श्री कट्टी को बनाया गया। मेरे जापान से वापिस आने के बाद मुझे यह पता चला। मैंने दादासाहब को कहा आप तुरंत कार्यवाही करें। यह कैसी उल्टी गंगा बह रही है। अध्यक्ष के अधिकार से दादासाहब ने खोब्रागडे को सेक्रेटरी के पद से हटा दिया और कुंभारे को सेक्रेटरी के पद पर नियुक्त किया। और गैरकानूनी कार्यवाही के लिए उनकी कड़े शब्दों में निंदा की।

इस दरम्यान दादासाहब गायकवाड़ अस्वस्थ होने के कारण अस्पताल में भर्ती थे। काली करतूत वाले ये लोग अस्पताल में भी आ पहुँचे। अपने कुकर्मों पर परदा डालते हुए बोलने लगे कि अपनी रिपब्लिकन पार्टी की स्थिति जैसी है वैसी ही रहने दीजिए। आप अध्यक्ष और खोब्रागडे सेक्रेटरी। वे इस प्रस्ताव पर दादासाहब गायकवाड़ के हस्ताक्षर लेना चाहते थे। मुझे इस बात का पता चला तो मैं तुरंत अस्पताल पहुँची। देखा तो दादासाहब के हाथ में प्रस्ताव था। मैंने कहा, "दादा आप इस मसौदे पर साइन करके कुंभारे के साथ अन्याय कर रहे हो। आपको एकतरफा निर्णय लेने का कोई अधिकार नहीं है।"

सन् 1989 में गवई फिर नासिक आए थे। और बोले, "ताई हमें और एक बार इकट्ठा आना चाहिए। रिपब्लिकन पार्टी के टुकड़े होते जा रहे हैं। एक सभा होनी जरूरी है।" मैंने गवई को सहमति दी। सभा मैंने रमाबाई अंबेडकर वस्तीगृह में बुलाई थी। इस सभा में एक कमेटी की स्थापना की गई। जिसमें मैं, ननवरे, कल्याणसागर, पगारे,

भालेराव, डॉ. ओहोल और गवई थे। हमको पत्र डालकर सभा का आयोजन करके आगे के रास्ते पर गंभीर चर्चा करनी थी। लेकिन जब सभा बुलाई गई, तब पता चला कि सभी कार्यकर्ताओं को उस सभा का निमंत्रण नहीं भेजा गया। स्वयं मुझे भी नहीं बुलाया गया। हम सब आश्चर्यचकित रह गए।

अब मैं इस जोड़-तोड़ की राजनीति से पूर्णतया निराश हो गई। लेकिन बाबासाहब की प्रेरणा, हमारी समाज की व्यथा, वेदना, पीड़ा समझकर-जानकर सामाजिक कार्य में कार्यरत रही हूँ। दादासाहब गायकवाड़ ने मुझे रिपब्लिकन पार्टी में काम करने का मौका दिया। दादासाहब के निर्वाण के बाद में राज्य स्तर पर रिपब्लिकन पार्टी की अध्यक्ष बनी।

भारतीय [illegible] संस्थान
पंजी सं. 153743
दिनांक 27-12-18

धूप और छाँव

शांताबाई दाणी का नाम और उनके कार्य समाज में अपना विशेष स्थान रखते हैं। महाराष्ट्र की राजनीति और रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इंडिया के नेताओं की सूची ताई शांताबाई दाणी के नाम के बिना अधूरी है। उनका जन्म महाराष्ट्र के नासिक शहर के एक गाँव खड़कली की एक झोंपड़ी में हुआ। महार जाति में जन्मी, उच्च शिक्षित, कुशल नेतृत्व की क्षमता से ओत-प्रोत, युवावस्था में ही उन्होंने बाबासाहब के भाषण और कार्यों से प्रेरित हो अपना समस्त जीवन दलित आंदोलन को समर्पित कर दिया। महाराष्ट्र के गाँव-गाँव जाकर दलित और दलित स्त्रियों को जगाने में अपना जीवन लगा दिया। उन्होंने कुशल नेतृत्व का परिचय देते हुए आरपीआई में टूट-फूट व गुटबंदी को रोकने और एकता लाने के कई प्रयास किए। इस पुस्तिका के माध्यम से उनके जीवन संघर्षों से हिंदी पाठकों को परिचित कराने की कोशिश की गई है।

रजनी तिलक स्त्री-मुक्ति आंदोलन की अग्रणी कार्यकर्ता हैं।
उषा अंबौरे एक दलित कवियत्री व सामाजिक कार्यकर्ता हैं।

आवरण : सुनीता
आवरण पेंटिंग : प्रवीण मिश्र

नवयान साहित्य
एम–3/22, मॉडल टाउन–II
दिल्ली–110 009

DAANISH BOOKS

दानिश बुक्स
सी–502, ताज अपार्टमेंट्स
गाजीपुर, दिल्ली–110 096

Library IIAS, Shimla
H 923.6 D 22 D
153743

20 रुपए
ISBN 81-89654-36-5
9 788189 654368